"धरती की पुकार

विनोद भटनागर (अलवेला)
शिवपुरी (म.प्र.)

गंगा में प्रदूषण, जमुना में प्रदूषण, सरस्वती, ताप्ती और इरावली में प्रदूषण, इस अकर्मण्य मानव ने कहाँ–कहाँ गंदगी नहीं फैलाई ये जग जाहिर है। जिधर भी देखो उधर हैरान कर देने वाली गंदगी। आज देश में मुँह बाये खड़ी है अधिक शिक्षा, अधिक धन और अधिक शोहरत एवं मोहलत हासिल करने वाले लोग ही इस धरती को धड़ा–धड़ कर रौंदे चले जा रहे हैं। बड़े–बड़े मकान, बड़ी–बड़ी दुकान, बड़े–बड़े मुकाम, बड़े–बड़े प्रतिष्ठान बनाकर पेड़–पौधे, वनस्पति, जंगल, खेत–खलियान, बाग–बगीचे, कुएं, तालाब, पोखर, झील, झरने सब कुछ तो नष्ट कर डाला अब बचा ही क्या है। यदि बचा है तो केवल लेखनी का दुखी मन् जिस मन ने अपने आप को इस धरती की तलहटी में भी डालकर बताना चाहा है कि आखिर हम कर क्या रहें हैं, दूर दृष्टि धरती से धरती पर प्रायः नगण्य दिखाई देने लगी है उसी पर जेल, उसी पर खेल, उसी पर रेल, यहां तक तो ठीक है परन्तु आगे चलकर जरा देखें तो उसी पर डाउन, उसी पर शिटडाउन, उसी पर अपडाउन और उसी पर बड़े–बड़े गोडाउन और कहीं नहीं उसी उपजाऊ धरती पर ही नदी किनारे, झील किनारे, तालाब किनारे कोसों तक उसकी अस्मिता से उसके सौन्दर्य से खिलवाड़ करते चले जा रहे हैं। खुद ही खुद हाथ से वो बीज बोते चले जा रहें है।

यदि लेखनी को और आगे ले चलें तो उसी पर जम्प, उसी पर स्टम्प, उसी पर पेट्रोल पंप, आखिर इस धरती माँ को भी हरियाली और खुली हवा में सांस लेने की जरूरत है। उसे भी श्वांस की आवश्यकता है, जल संग्रहण की आवश्यकता है। स्वछ जल देने की आवश्यकता है भला ऐसा कब तक चलेगा। आप चले भी जायेंगें तो आने वाली पीढ़ी इस धरा का आनन्द कहाँ और कैसे ले पायेगी। क्या आपने दृष्टि से सृष्टि को निहारने का कभी प्रयास किया है, इस बात को नजर अंदाज करना ठीक नहीं, क्योंकि हमें मालूम है कि आगे पहले ही हम कारखाना, दवाखाना, महखाना में ही खोते चले गये इनकी मूक भाषा इसका सौन्दर्य आँखों के सामने ही देखते ही देखते ओझल होता चला जा रहा है। ऐसा कब तक, बन्द करें ऐसी कवायद जो हमें और आने वाली विवशताओं और अवस्थाओं पर मरना पड़े ये ठीक नहीं है।

जिस चीज से आज हमारी पवित्र नदियां हैरान है उसी चीज को आप वस्त्र, वस्तु वासना के व्यवहर से गंगा से लेकर हुगली तक और आगे गंगा सागर तक हमारी विलासता ने हमारे ढोंग ने प्लास्टिक से कास्टिक तक और कास्टिक से लास्टिक तक ने धरती के हर कोने–कोने को ही भर डाला है। ये कौन उदण्ड है जिन्हें ये भी डर और भय नहीं जो हम कर रहें हैं क्या वह ठीक है?

जिन पेड़, वृक्षों और वनस्पति से खुद श्वास लेना चाहते है लेकिन हम उनकी श्वासों से अनभिज्ञ हैं, जिन्हें हमने बेतुके माया जाल से कोसों तक शहर–शहरों तक जड़ मूल से ही नष्ट कर दिया। जरा सोचो क्या ये जानवर कर रहें है? नहीं ये हम और तुम जैसे मानव ही करते दिखाई दे रहें है जो घमण्ड में चूर, नशे में मशगूल इस धरती के आंगन को जितना गंदा कर सकते हैं करते चले जा रहे हैं। पहले हम पॉलीथीन को ही रो रहे थे परन्तु अब हर चीज उस प्लास्टिक से बना दी गई है जिसे सहजता से नहीं समाप्त किया जा सकता। चाहे दवा हो, हवा हो, सभी तो प्लास्टिक ने दबा कर रख दिया है पानी पाउच, पानी की बोतल, टोनिक, तेल, प्लास्टिक जार, कूलर गाड़ियों ने हर घर को अपने अस्तित्व में समाविष्ट कर लिया है भला उससे कैसे और कहां छुटकारा पाया जा सकता है, क्या आप पर निदान है?

लेखनी के माध्यम से धरा को मरा ना समझ कर हम बताना चाहेगें कि इस धरा को अधमरा मत करो इस के सीने की खानों के बेतुके दीवाने ना बनो, आपने पानी तक को खींच डाला जिसकी कल–कल धारायें कभी ऊपर उठकर अपने रूप का बखान कर खुद रोमांचक होकर हम आपको रोमांचित किया करती थी। आज वहीं और उसमें पड़े रहने वाले पत्थर कह रहें हैं कि हम मीलों–मीलों तक पानी के थपेड़ों को झेलते हुए गंगा, जमुना, सरस्वती आदि में ढलकते हुए कहां–कहां नहीं पहुंच जाते थे। आज वही गोल सालिगराम पत्थर सूखे रेत में पड़े हुए शार्मिंदा हैं कि हाय मेरी गंगा, हाय मेरी जमुना कहाँ रूक रही है। जलचर, थलचर, नभचर सभी इस हैरान गंदगी को झेलने में प्रायः नगण्य से दिखाई देते हैं। देश, राज्य, जिले, तहसील, गांव तो वहीं हैं परन्तु हम और आप राहों से फिसलते चले गये, यदि आज हम आप इस धरती पर एक–एक पेड़ लगाते, सारा भारत ही ढक जाता कहीं ऐसा कर पाते, तो बात ही कुछ ओर होती। लेकिन सहजता और नैतिकता ने अपना वर्चस्व हर मायने में अराजकता की ओर अपने पैरों को चलाया है चाहे जन की हो, मन की हो, तन की हो, धन की हो केवल अपनी करतूतों से चिंताओं को चिता की ओर मोड़ डाला है। अब नजरों और बुरे कर्मो को विराम दें और आज ही भविष्य को बचायें और हम उन पहाड़, पहाड़ियों, पर्वतों की ओर भी चलें जो वीराने बन कर दीवाने बन कर इस धरती को ऊचाइयों से नीचाइयों तक हरा भरा देखना और दिखाना चाहते हैं वह कह रहें हैं हम पर खेल के मैदान बना दें, हम पर पेड़ लगा दें, सौर ऊर्जा के बड़े–बड़े प्लान्टेशन जड़वा दें, पवन चक्की लगवा दें, ऐसी ऊँची सोच को क्या हकीकत का जामा पहनाया जा सकता है? जी हां पहनाया जा सकता है, वह कब जब हम अपने जीवन को भरण पोषण से संतुष्ट कर इनकी ओर निहारें इसी सोच को अतीत के झरोखों में देखा जा सकता है। जिन पहाड़ों को उन राजा, महाराजों ने अपनी सोचों को बदलकर खूबसूरत दुनियां देखने और दिखाने का मौका दिया। किलों की चार दिवारों से झांककर खेतों, नदियों, तालाबों, पोखरों को आनन्दमय बनवाया। भला क्यों न उन्हें भी हर्षाने वाला लगा होगा धन्य है जिन्हें उन विलासिता रूपी राजे महाराजों को जिन्होंने प्रकृति को सहज कर रखा और रखवाया, बल्कि उन्हें सीने से लगाकर अपने जहाँन को ही बदल डाला काश कहीं वे भी पहाड़ों की जगह नीचे उपजाऊ धरती पर बड़े–बड़े किले बना देते फिर आप क्या करते, वैसे तो अब वह समय आ गया है जब हम उन आशाओं की ओर अपनी दशा और दिशा दे तो परिवर्तन से बर्तन तक और बर्तन से नर तन तक को नया जामा पहनाया जा सकता है नदियों से कहीं दूर, झीलों से दूर, तालाबों से दूर जिन हाथों में ले जाने को सब कुछ ले जा सकते है लेकिन अब उन्हें उन पन्नी, अठन्नी और चवन्नी की आवश्यकता नहीं है मीलो से पहले खाली हाथों से ही उन्हें चमकाया, लुभाया और नया रूप और स्वरूप दिया जा सकता है।

कण–कण में भगवान उसी तरह धरा पर चप्पे–चप्पे पर इन्सान ने अपनी दस्तक और उपस्थिति दे डाली है। उसी नजर से नये नजारों को कहॉ जन्म दिया जा सकता है। हमारे पर्वत, पहाड़, पहाड़ियां, टीले इतने विशालकाय रूप में समाहित हैं जरा उन्हें भी तो देखें वे कितने सुन्दर हैं कितने मैदानी सीने हैं जब बारिश होती है तो इनके स्वरूप का बखान ही क्या करें आज हम भारतवासियों का कितना सौभाग्य है कि प्रभु की दी हुई अपार सम्पदा से हम और आप भरपूर हैं आनन्दमय है आजाद है। और क्या चाहिए रहने को मकान, खाने को दुकान, कर्म को मुकाम, धर्म में महान रखने वाला देश हमें सुन्दर रहने सुन्दर देखने, सुन्दर करने वाला राम का देश विरासत में मिला है फिर क्यों न हम सब मिलकर इस बात को गहनता पर गहनों की तरह संजोये तो भला धरती का आंगन क्या नहीं देगा जो कल्पना से परे होगा।

इस धरा की मूक भाषा, इसका सौन्दर्य इन आँखों के सामने देखते ही देखते ओझल ना होने दें जहाँ कभी नहाया करते थे, निल्हाया करते थे वहीं आज हमने ही वहाँ रहकर देखकर, फेंककर चित्र और चरित्र से कालिख पोत डाली, क्या यही आपकी नैतिकता है पक्षी को दाना नहीं, राहगीर को छाया नहीं, हंसी की दुनियां ही बना डाली आज आंगन की तुलसी भी आपसे कोसो दूर जा चुकी है इसका जरा भी मलाल नहीं, वैसे ही आज हमारी पवित्र नदियाँ भी हैरान ही नहीं अपितु अपने अस्तित्व की भीख सी मांगती दिखाई देती है। वह कह रहीं है मैं नदी ही नहीं बल्कि दीन भी

हूँ मेरे दोनों अक्षर पलट कर तो देखो आखिर मैं कौन हूँ, क्या चाहती हूँ?, अपना दायित्व कैसे निभाती हूँ। मेरी तरह आप भी तो दायित्व निभाकर देखो जहाँ मैं चमन और अमन ना कर दूं तो कहना।

यही गंगा मां की पुकार है यही उन पवित्र आत्माओं की जिन्होंने हमें कभी वह चमचमाता जल और जहांन दिया था वैसा ही फिर हम वह दिन और दशा अच्छी सोच अच्छी मौज को साकार करने का प्रयास करेंगे तो अवश्य ही आगे और धागे की डोर फैला कर वह दिन दूर नहीं जब हम अपने पर्व अपने देश पर गर्व कर नदियों के नन्द का आनन्द का पैगाम देंगे।

जय गंगा मां सद्बुद्धि देना, आपको बारम्बार नमन्।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी हमारे देश की एकता में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होगी, इसमें दो राय नहीं।

—जवाहरलाल नेहरू